THE TIMES OF INDIA

Date: 12-10-18

A Many Layered Circus

Riddled with conflict of interest, IL&FS exposes the underbelly of our governance

Gajendra Haldea, (Gajendra is the former principal adviser (Infrastructure) of Planning Commission)

As the truth of IL&FS unfolds investors, banks and the exchequer will end up with significant losses. I have closely observed, during the last two decades, a few projects of IL&FS and found a common pattern of manipulations and machinations. Unfortunately, i never got an opportunity to comment officially on any of these projects, except in the case of Delhi Mumbai Industrial Corridor (DMIC) project where i was able to prevent much potential damage.

The modus operandi of IL&FS across projects was to get the central and state governments to set up Special Purpose Vehicles (SPVs) and trusts where the checks and balances associated with public funds were grossly undermined. Under the SPV model, IL&FS would typically contribute 50% of the equity while an equal amount came from the government. As per law such SPVs are private companies, free of the checks and restrictions applicable to government companies. As a result, they can expend public money as if it were private money.

In the said SPVs the secretary of a central ministry or the chief secretary of a state government would be the chairperson, while the managing director who exercised real control would be an IL&FS nominee. The objective was to project these SPVs as if they were government entities implementing public infrastructure projects. To make further inroads into the government, IL&FS employed several serving and retired bureaucrats and also distributed largesse such as jobs for their children. IL&FS never had much capital of its own. So all its SPVs had a rather narrow equity base with much money coming from the government in the form of subordinate debt or other support. Despite its small equity investments, IL&FS managed to control and expend vast sums of public money. No other company could ever manage a fraction of such bounty.

In 1997, a Noida official informally showed me the draft concession agreement for the then proposed Noida Toll Bridge. I was appalled by its contents. But since i had no locus, my views were completely ignored. I guided a World Bank researcher in 2007 on a case study which brought out the super profits of IL&FS, in addition to a manipulated extension of the 30-year concession to over 100 years (see www.gajendrahaldea.in). Moreover, IL&FS and its associates benefited from this project while functioning as advisers, consultants, concessionaire, investors and lenders, notwithstanding their conflicts of interest. As events unfolded, the Supreme Court stopped all tolling on this bridge in 2017. Be

it Tirupur Water Supply Project, East Coast Road in Tamil Nadu, several highway projects of RIDCOR in Rajasthan or GIFT city in Gujarat, the pattern has been similar. IL&FS managed to get these and numerous other projects on a silver platter, and without the mandatory competitive bidding required for all public projects.

As for DMIC, a similar SPV called the Delhi-Mumbai Industrial Corridor Development Corporation (DMICDC) was set up by IL&FS and the department of industrial policy and promotion (DIPP) in 2008 for developing 24 industrial townships across states. Unsuspecting state officials were led to believe that DMICDC was a government company as not only was the secretary, DIPP its chairperson, it also displayed the address of Udyog Bhavan on its stationery. As a result, state governments rolled out a red carpet for DMICDC and signed several agreements and MoUs.

A proposal was moved in 2013 to get 'in principle' approval of the erstwhile Planning Commission for allocation of Rs 20,000 crore to DMICDC. That is when i raised a fundamental objection that being a private company, DMICDC could not be the recipient of such government funds. Since the then deputy chairman of the Planning Commission endorsed my stand, there was no option left for DIPP but to ask IL&FS to divest its equity and exit from DMICDC. Thus, the DMIC project was saved from the present turmoil in IL&FS.

Given its all-pervasive influence IL&FS was not only able to mobilise debt funds exceeding a trillion rupees, it was also the recipient of guaranteed profits in several projects while its costs were not questioned. It always seemed to operate beyond its means while its 'wizards' demonstrated extraordinary 'talent' when it came to 'managing' the governments and financial institutions. However, what they evidently lacked was the capacity to operate their projects successfully.

According to recent reports, IL&FS presently presides over a maze of 348 subsidiaries and associates. It is essentially a project-based outfit operating in the garb of a financial institution. One wonders how RBI failed to notice and check this inherent conflict in IL&FS which was virtually acting as a lender as well as borrower. In fact, IL&FS is an embodiment of unparalleled, wide-ranging and deep-rooted conflicts of interest and could well be called an epitome of conflicts.

As the multiple layers of this circus unfold, the resulting burden would have to be borne by none other than the common man, and it is bound to be enormous. The Centre and RBI have already intervened, primarily to protect the financial markets. But they don't seem to possess any magic wand that can address these complex issues and yet prevent significant damage to multiple quarters. By comparison, Vijay Mallya and Nirav Modi may have caused much less damage!

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 12-10-18

अच्छी पहल

संपादकीय

जानकारी के मुताबिक भारतीय ऋणशोधन अक्षमता एवं दिवालिया बोर्ड (आईबीबीआई) ऐसे नियमों पर काम कर रहा है जो यह सुनिश्चित करेंगे कि कर्ज में फंसी परिसंपत्तियों की गारंटी देने वालों को भी वसूली प्रक्रिया का विषय बनाया जाए। यह कदम स्वागतयोग्य है क्योंकि देखा गया है कि देश में कई कंपनियों के प्रवर्तकों ने बैंकों से व्यक्तिगत गारंटी के तहत ऋण लिया है और बाद में कंपनी के दिवालिया होने पर बैंकों को उसकी वसूली करने में दिक्कत का सामना करना पड़ा। इस विचार के तहत अगर ऋणदाता मौजूदा दिवालिया प्रक्रिया के तहत कंपनियों से अपना बकाया वसूलने में नाकाम रहते हैं तो वे इन कंपनियों के गारंटरों से वसूली का प्रयास कर सकते हैं। यह नियम अगर ठीक ढंग से प्रभावी हुआ तो यह व्यक्तिगत स्तर पर और होल्डिंग कंपनी, दोनों पर लागू होगा।

मौजूदा नियमन में भी कंपनियों और प्रवर्तक अंशधारकों के बीच की कानूनी दूरी को सावधानीपूर्वक बरकरार रखा गया है लेकिन व्यवहार में यह बहुत कम रह गई है। खासतौर पर तब जबकि मामला उधारी का हो। जब गारंटर स्वयं प्रवर्तक भी हो तो निश्चित तौर पर तयशुदा सीमित जवाबदेही का सिद्घांत पूरी तरह लागू नहीं होता। व्यक्तिगत स्तर पर ऐसे कई मामले हैं जहां लोग संकटग्रस्त और डूब रही कंपनियों को, जो दिवालिया प्रक्रिया से गुजर रही हों, भारी भरकम कर्ज देने के बावजूद खुद ऐश भरा जीवन जीते रहे हैं। जबकि ऋणदाता अपना बकाया पैसा वसूल करने की जद्दोजहद में लगे रहते हैं। यह सिलसिला अनंतकाल तक नहीं चलता रह सकता और ऐसे में यह अच्छी खबर है कि ऋणशोधन नियामक को सरकार द्वारा देश में प्रवर्तक संस्कृति को समाप्त करने की व्यापक प्रक्रिया का हिस्सा बनाया जा रहा है। ऐसे प्रयासों की अन्य घटनाओं की बात करें तो उसमें फर्जी कंपनियों की तलाश भी शामिल है।

ये वे कंपनियां हैं जिनका इस्तेमाल प्रवर्तकों द्वारा कर वंचना या परिसंपत्ति को ठिकाने लगाने के लिए किया जाता है। ऋणशोधन अक्षमता और दिवालिया प्रक्रिया में भी सरकार ने उन प्रवर्तकों को अन्य कंपनियों की बोली प्रक्रिया में शामिल होने से रोकने का प्रयास किया था जिन्होंने ऋण ले रखा था और जिनकी परिसंपत्ति को फंसी हुई परिसंपत्ति घोषित किया गया था। दलील यही है कि अगर उन प्रवर्तकों के पास संसाधन हैं तो उनको पहले इनका इस्तेमाल अपनी कंपनियों में निवेश के लिए करना चाहिए। यह मानना भी उचित है कि प्रवर्तक ऋणशोधन अक्षमता एवं दिवालिया संहिता (आईबीसी) प्रक्रिया का इस्तेमाल नियंत्रण कायम रखते हुए अपने कर्ज को कम करने में भी कर सकते थे। ऐसे व्यवहार को प्रोत्साहन नहीं दिया जाना चाहिए और गारंटी के दुरुपयोग को खत्म करना भी इस दिशा में एक कदम है।

गारंटरों को लेकर ऋणशोधन अक्षमता एवं दिवालिया प्रक्रिया से जुड़े कुछ और सवाल भी हैं जिनका जवाब जरूरी है। उदाहरण के लिए अगर किसी समूह कंपनी और उस कंपनी के ऋण की गारंटी देने वाली होल्डिंग कंपनी दोनों ऋणशोधन अक्षमता प्रक्रिया में शामिल हों तो क्या होगा? इस मामले में ऋणदाताओं की क्या स्थिति होगी, खासतौर पर उनकी जिन्होंने समूह कंपनी और होल्डिंग कंपनी दोनों को ऋण दिया हो? व्यक्तिगत दिवालियापन को लेकर उठे सवालों को हल करना होगा क्योंकि व्यक्तिगत गारंटी को भी आईबीसी की प्रक्रिया के तहत लाया जा रहा है। इसके अलावा इस बात को लेकर भी चिंता है कि क्या कॉर्पोरेट ऋण के लिए व्यक्तिगत गारंटी मांगने वाले बैंक, बेहतर जोखिम प्रबंधन की

अपनी जवाबदेही त्याग रहे हैं? हालांकि अभी भी नियामक को काफी कुछ करना है लेकिन देश में प्रवर्तकों के बचाव की संस्कृति को खत्म करने की दिशा में यह अच्छी शुरुआत है।

नईदुनिया

Date: 12-10-18

यौन शोषण के खिलाफ मी टू अभियान ने भारत में हलचल पैदा कर दी

संपादकीय

यौन शोषण के मामलों को उजागर करने के लिए अमेरिका में मी टू नाम से शुरू हुआ अभियान दुनिया के अन्य देशों में असर दिखाने के बाद भारत में भी हलचल पैदा कर रहा है। भारत में इस अभियान का असर दिखना इसलिए अच्छा है, क्योंकि यह एक सच्चाई है कि अपने यहां भी महिलाओं का यौन शोषण किया जाता है। वस्तुत: यह सदियों से होता चला आ रहा है। समर्थ-सक्षम लोग अपने पद या प्रभाव का बेजा इस्तेमाल कर महिलाओं को अपनी यौन लिप्सा का शिकार बनाते हैं । हाल में फिल्मी दुनिया के साथ ही अन्य क्षेत्रों में यौन शोषण के जो कुछ बेहद चर्चित या फिर एक दायरे तक सीमित मामले सामने आए हैं वे तो महज बानगी भर हैं। यह सहज ही समझा जा सकता है कि यौन प्रताड़ना का शिकार हुई तमाम महिलाएं ऐसी होंगी जो अपनी आपबीती बयान करने का साहस नहीं जुटा पा रही होंगी। नि:संदेह यह मी टू अभियान के प्रति भारतीय समाज के रुख-रवैये पर निर्भर करेगा कि यौन प्रताड़ना से दो-चार हुई महिलाएं भविष्य में अपनी आपबीती बयान करने के लिए आगे आती हैं या नहीं? जो भी हो, यौन शोषण के हाल के जो मामले सामने आए हैं वे यही प्रकट कर रहे हैं कि अब महिलाएं चुप बैठने वाली नहीं हैं ।

यदि समाज को यह संदेश सही तरह जाता है कि महिलाओं की किसी मजबूरी का लाभ उठाकर उनका दैहिक शोषण करने वाले देर-सबेर बेनकाब होने के साथ ही शर्मसार हो सकते हैं तो फिर ऐसे तत्वों पर लगाम लग सकती है। यह लगाम लगनी ही चाहिए, लेकिन यह काम केवल यौन शोषण रोधी सक्षम कानूनों और अदालतों की सक्रियता एवं संवेदनशीलता से ही नहीं होने वाला। समाज को भी अपना रवैया बदलना होगा ताकि प्रथमदृष्टया दोषी दिखने वाले नरमी के हकदार न बनने पाएं। पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं का शोषण एक कटु सत्य है, लेकिन मी टू अभियान की अपनी सीमाएं भी हैं । इसमें संदेह है कि यौन शोषण के जो मामले सामने आए हैं उनमें कठघरे में खड़े और लांछित हो रहे लोगों को आसानी से दंडित किया जा सकता है।

एक तो चार-छह-दस साल पुरानी घटना के प्रमाण मिलना कठिन हैं और दूसरे उन्हें साबित करना भी मुश्किल है। एक समस्या यह भी है कि खराब आचरण और यौन प्रताड़ना के बीच एक विभाजन रेखा है। कुछ मामलों में यह विभाजन रेखा खत्म होती सी दिखती है। इसी तरह इसकी भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि अभी हाल में अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट में राष्ट्रपति ट्रंप की ओर से नामित ब्रेट कैवनॉघ यौन शोषण के आरोपों से घिरने के बाद भी न्यायाधीश की शपथ लेने में कामयाब रहे। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि सुबूतों के अभाव में उनके खिलाफ लगे आरोप प्रमाणित नहीं हो सके। इसी कारण तमाम विरोध के बावजूद सीनेट ने उनके नाम को मंजूरी प्रदान की। ऐसा ही अन्य मामलों में भी हो सकता है। यह कहना कठिन है कि भारत में सहसा शुरू हुए मी टू अभियान का अंजाम क्या होगा, लेकिन महिलाओं को यौन शोषण से बचाए रखने वाले माहौल का निर्माण हर किसी की प्राथमिकता में होना चाहिए।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 11-10-18

लंबा रास्ता तय करना है हमारे मी टू को

जयंती रंगनाथन, कार्यकारी संपादक, हिन्दुस्तान

हैशटैग-मी टू की गुहार हमारे यहां भी पहुंच ही गई। इस अभियान के लिए शक्ति के पर्व से बेहतर मौका और क्या हो सकता है? हर दिन कुछ नए नाम सामने आ रहे हैं, नए खुलासे हो रहे हैं, बातें बन रही हैं। फिल्म जगत, मीडिया, मनोरंजन जगत, राजनीति... औरतें सामने आ रही हैं, बता रही हैं कि बरसों पहले उनके साथ क्या हुआ था? कइयों ने कहा, हमारे पास उस समय आवाज उठाने का साहस नहीं था। वह शक्तिशाली था, उसके हाथ में हमारा भविष्य था। अब जब सब आवाज उठा रहे हैं, तो लग रहा है कि यही सही वक्त है,

अपने साथ हुए यौन शोषण को दुनिया के सामने लाने का। क्या यह सिर्फ शक्ति और सेक्स की जंग है? क्या हमारा समाज औरत विरोधी है? क्या यहां किसी भी क्षेत्र में महिलाएं सुरक्षित नहीं? मैं ऐसा नहीं पाती। तीस साल पहले, जब मैंने अपने लिए पत्रकारिता का पेशा चुना था, तब पता था कि इस क्षेत्र में नाममात्र स्त्रियां होंगी। साथ काम करने वाले कुछ हमउम्र, तो कुछ वरिष्ठ पुरुष थे। धर्मयुग के संपादक धर्मवीर भारती ने काम करने का माहौल जरूर सख्त रखा था, पर महिलाओं के लिए सौहार्दपूर्ण और स्नेहिल माहौल था। कभी यह एहसास नहीं हुआ कि आपको स्त्री होने की वजह से कम आंका जा रहा है। अपने आसपास दूसरी संस्थाओं में भी आमतौर पर ऐसा ही माहौल पाया। पूरे संस्थान में कोई एक पुरुष साथी ऐसा होता था, जिससे युवा लड़कियों को दूर रहने की सलाह दी जाती। और यह सलाह भी पुरुष और महिलाएं, दोनों देते थे। इसके अलावा स्त्री-पुरुष के बीच जो भी रिश्ते बनते, उनकी आपसी सहमति से बनते थे।

हैशटैग मी टू इंडिया की लहर शुरू हुई नब्बे के दशक की मिस इंडिया और फिल्म अभिनेत्री तनुश्री दत्त के उस बयान से, जिसमें उन्होंने दस साल पहले नाना पाटेकर पर फिल्म हॉर्न ओके प्लीज के एक आइटम गाने की शूटिंग के दौरान यौन प्रताड़ना और हिंसा का इल्जाम लगाया था। पिछले कुछ साल से तनुश्री देश से बाहर हैं। इस घटना के तुरंत बाद भी वह मुंबई में पुलिस के पास गई थीं। लेकिन केस तब रफा-दफा हो गया। वर्षों बाद जब वह वतन लौटीं, तो उन्होंने एक बार फिर अपने साथ हुई प्रताड़ना का जिक्र छेड़ दिया।

तनुश्री के बयान के बाद बेशक इंडस्ट्री के बहुत कम लोगों ने उनका साथ दिया, पर कुछ ही दिनों में फिल्म इंडस्ट्री, मनोरंजन, राजनीति, पत्रकारिता और दूसरे भी क्षेत्र से जुड़ी कई हस्तियों के नाम सामने आने लगे। तीन दिन पहले रात को फेसबुक पर जब नब्बे के दशक में चर्चित धारावाहिक तारा की निर्माता और लेखिका विनता नंदा की पोस्ट पढ़ी, तो अवाक् रह गई। विनता से तारा के निर्माण के दौरान और उसके बाद भी कई बार मिल चुकी हूं। हमारी पीढ़ी की वह एक स्मार्ट और प्रतिभाशाली नाम थीं। 19 साल बाद विनता ने यह राज खोला है कि कैसे तारा में काम करने वाले मुख्य

कलाकार आलोक नाथ ने उनके साथ न सिर्फ बलात्कार किया, बल्कि उन्हें प्रताड़ित भी किया था। विनता कहती हैं, 'आलोक को सजा हो न हो, इससे अब मुझे फर्क नहीं पड़ता। मैं लंबे समय तक अवसाद में रही। मेरा करियर लगभग खत्म हो गया। मुझे इस हादसे से निकलने में वक्त लगा। अब जाकर हिम्मत जुटा पाई हूं कि जो मेरे साथ हुआ, वह दुनिया को बता सकूं।'

मुंबई में रहते हुए लंबे समय तक मैंने फिल्म और टीवी जगत को काफी नजदीक से देखा है। इस इंडस्ट्री का खेल दौलत-शोहरत और सेक्स पर टिका है। जिसके पास यह सब कुछ है, वह इस खेल में सबसे पावरफुल माना जाता है। इंडस्ट्री में येन-केन-प्रकारेण पैर जमाने को आतुर युवा अपने हिस्से का छोटा सा खेल खेलते हैं। इसमें कभी उनकी जीत होती है, तो कभी हार। हैशटैग मी टू के बारे में चर्चित अभिनेत्री और निर्माता पूजा भट्ट कहती हैं, 'आप दुनिया के हर मर्द को कठघरे में नहीं खड़ा कर सकते। उसी तरह, आप यह भी नहीं कह सकते कि हमेशा औरत ही सही होती है। मैं इस इंडस्ट्री की बेटी हूं और यहां पर हर रिश्ता आपसी लेन-देन का होता है। अगर किसी के साथ कुछ गलत हुआ है, तो उसे आवाज उठानी ही चाहिए, ताकि जो गलत है, उसे और आगे बढ़ने का मौका न मिले।'

पिछले साल लगभग इसी समय हॉलीवुड मी टू कैंपेन से थर्रा गया था। अभिनेत्री एलिसा मिलानो ने सोशल मीडिया पर मी टू हैशटैग के साथ नामी निर्माता हार्वे वांइस्टीन के यौन शोषण की करतूतों को जगजाहिर किया। इसके बाद तो कई अभिनेत्रियों ने अपनी बात सामने रखी। देखते-देखते मी टू कैंपेन ने हॉलीवुड के कई नए-पुराने नामों की धज्जियां उड़ाकर रख दी। हॉलीवुड और अब अपने यहां भी यही लगता है कि मी टू जैसे अभियान के लिए कोई तैयारी जैसी चीज नहीं करनी पड़ती। आपको बस खुले दिल से यह स्वीकार करना होगा कि आप अपने सामने कुछ गलत नहीं होने देंगे। अभी तक जो भी मामले सामने आए हैं, उनमें अधिकांश मामले वर्षों पहले घटे हैं। अभी तो आरोप तय होना है। पुरुषों को भी अपना पक्ष सामने रखना है। लेकिन यह बात भी अहम है कि स्त्रियां अपनी हर असफलता का दारोमदार मी टू पर नहीं बांध सकतीं। आपको अपने कुछ मसले खुद ही सुलझाने होंगे।

पिछले पांच साल से अपने संस्थान में यौन अपराध कमेटी की अध्यक्ष होने के लिहाज से मैंने यह पाया कि किसी भी कृत्य में भागीदारी सिर्फ पुरुष की या सिर्फ स्त्री की नहीं होती। हमेशा पुरुष ही गलत नहीं होते, कुछ मामले ऐसे भी सामने आए, जहां लड़कियां अपनी मर्जी से बने रिश्ते के टूट जाने के बाद आक्रामक हो गईं। मामले की सच्चाई जाने बिना किसी एक का पक्ष लेना अभियान की आंच को ध्वस्त कर सकता है। लेकिन यह भी सही है कि किसी स्त्री के साथ अगर कभी भी गलत हुआ है, तो उसे न्याय मिलना चाहिए और आरोपी को सजा। चाहे मी टू हो या न हो। जिस तरह रोज खुलासे हो रहे हैं, उससे लग रहा है, अभी तो बस यह शुरुआत भर है। अभी तो और आवाजें उठनी हैं। इन आवाजों के जरिए ही इस अभियान की दिशा तय होगी और अंजाम भी। कहीं ऐसा न हो कि यह अभियान कुछ पुराने झगड़े निपटाने और अपना गुस्सा उतारने का एक मंच भर बनकर रह जाए।

Date: 11-10-18

कहीं अदालत में दम तो नहीं तोड़ देगी यह उम्मीद

कमलेश जैन, अधिवक्ता, सुप्रीम कोर्ट

शोषण की एक खास प्रकृति होती है- मजबूत द्वारा कमजोर का शोषण करना। इसमें कमजोर किसी न किसी वजह से चुप रहता है। इन दिनों चल रहा 'मी टू' अभियान शोषण के इस चरित्र को खंडित करता है। अब रसूखदारों को भी यह डर सताएगा कि आज नहीं, तो कुछ वर्षों बाद भी यदि उनका असली चेहरा सार्वजनिक कर दिया गया, तो उनकी कितनी फजीहत होगी? इसकी कोई गारंटी नहीं कि आज जिस वजह से शोषित चुप है, वह भविष्य में भी उसकी मजबूरी बनी रहेगी। इस लिहाज से देखें, तो अब दुनिया 'रिवर्स मोड' में आ जाएगी। पहले सब कुछ औरतों को झेलना पड़ता था, अब पुरुष को भी झेलना होगा। यह जाहिर तौर पर यौन हिंसा के मामलों को भी कम करने में सहायक होगा।

यह सही है कि 'मी टू' मुहिम औरतों के पक्ष में है। मगर इसे लेकर मिली-जुली प्रतिक्रिया दिख रही है। एकाध मामलों में तो महिलाएं उसी के पक्ष में खड़ी दिखीं, जिस पर आरोप लगाया गया है। ऐसा दरअसल हमारे सामाजिक ढांचे की वजह से हो रहा है। चूंकि पुरुष वर्चस्ववादी सोच अब भी हमारे समाज पर हावी है, इसीलिए ज्यादातर महिलाएं भी इसी सोच को जी रही हैं। वे अब भी यही मानकर चल रही हैं कि यदि किसी लड़की के साथ कुछ गलत हुआ है, तो दोष लड़की का होगा। कई जगहों पर तो आज भी विधवा होना औरतों का ही अभिशाप माना जाता है। फिर भी, इस 'मी टू' के असर को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इसने इसी पुरुष वर्चस्ववादी सोच के अंत की शुरुआत की है। यह एक संक्रमण काल है, जिसका नतीजा अच्छा ही निकलेगा।

कानून के नजरिये से देखें, तो अभी तक जितने भी मामले सामने आए हैं, वे अदालत में ठहरते नहीं दिखते। किसी भी अपराध को साबित करने में 'समय' बहुत बड़ी भूमिका निभाता है। अगर एक दिन का वक्त भी मिल जाए, तो सुबूत के साथ छेड़छाड़ की जा सकती है या गवाह पर दबाव बनाया जा सकता है। चूंकि अभी वर्षों पुराने मामले खुल रहे हैं, इसलिए इसे अदालत में साबित कर पाना टेढ़ी खीर होगा। वाट्सएप संदेश या वीडियो आदि बतौर सुबूत जरूर पेश किए जा सकते हैं। मगर अदालत इसकी भी जांच करेगी कि कहीं इन सुबूतों के साथ छेड़छाड़ तो नहीं की गई है? कहीं ई-मेल हैक तो नहीं किया गया है? या फिर, वाट्सएप का इस्तेमाल आरोपी की बजाय कोई दूसरा तो नहीं कर रहा था? ऐसे वक्त में, जब भारत में यौन दुर्व्यवहार के मामलों को साबित करने की दर काफी कम है, तब वर्षों पुराने मामले भला कितनी दूर तक आगे बढ़ पाएंगे?

मगर हां, इस अभियान से मौजूदा और हमारी आने वाली पीढ़ी को जरूर फायदा होगा। वह अब कहीं अधिक बोल्ड होगी। हर दुर्व्यवहार में लड़की को ही दोष देने का जो 'टैबू' हमारे समाज का है, वह टूटेगा। यही 'टैबू' पुरुषों को हिम्मत देता है। जिस कारण आज भी यौन उत्पीड़न के 90 फीसदी मामले दर्ज नहीं हो पाते। साल 2012 में दिल्ली में हुए बर्बर निर्भया कांड के बाद यह वर्जना कुछ हद तक टूटी थी। मगर 'मी टू' इसे एक नई ऊंचाई तक ले जाता दिख रहा है। मेरा मानना है कि अब तस्वीर काफी हद तक सुधर जाएगी। लड़कियों के मन का खौफ खत्म होगा। वे यौन उत्पीड़न या दुर्व्यवहार के खिलाफ कहीं अधिक मुखर होंगी। हां, इससे पुरुषों पर अतिरिक्त दबाव भी होगा। उन्हें बदनाम करने के लिए गलत

आरोप भी लगाए जा सकते हैं। मगर आचरण में शुद्धता के लिए ऐसे किसी दबाव का स्वागत किया जाना चाहिए। गलत आरोप का प्रतिकार तो होगा ही।

हमारा समाज असल में कई स्तरों पर बंटा है। जाहिर है, सोच में भी काफी अंतर है। छोटे बनाम बड़े शहर, घरेलू बनाम कारोबारी महिला, अच्छी बनाम कमतर आमदनी वाली नौकरी, जैसे तमाम स्तरों में सोच-सोच का फर्क दिखता है। खुद हमारे कई मुखौटे हैं। हमारा निजी और सार्वजनिक जीवन अलग-अलग होता है। अपने परिवार और दूसरे के परिवार को लेकर हमारी राय अलग-अलग होती है। 'मी टू' इन तमाम बेड़ियों को तोड़ता दिख रहा है। इससे एक जीवंत माहौल बन रहा है। अब महिलाओं को कमतर और कमजोर समझने की भूल 'मजबूतों' पर भारी पड़ेगी।

Date: 11-10-18

राष्ट्रीय सहारा

उचित मांग

संपादकीय

संयुक्त राष्ट्र में भारत के स्थायी प्रतिनिधि सैयद अकबरुद्दीन ने इस महत्त्वपूर्ण नियंतण्र संगठन के ढांचे और कार्यपण्राली में सुधार करने का सुझाव दिया है, जो मौजूदा दौर की अहम जरूरत है। हालांकि लंबे समय से भारत सहित अनेक सदस्य देशों ने स्वीकार किया है कि यह संगठन मौजूदा दौर की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है, बावजूद इसके महाशक्तियों के बीच अनवरत रूप से जारी सत्ता की राजनीति के कारण इसके संरचनात्मक और प्रक्रियागत ढांचे में सुधार की प्रक्रिया आगे नहीं बढ़ पाई है। उन्नीस सौ पैंतालिस में संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुई थी। तब पचास देश इसके सदस्य थे, और आज करीब एक सौ नब्बे से ज्यादा देश। आज विश्व की भू-राजनीति बदल रही है। आतंकवाद, साइबर क्राइम जैसे नये किस्म के अपराधों के साथ-साथ नियंतण्र स्तर पर सशस्त्र संघर्ष तेज हुआ है, लेकिन अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने के उद्देश्य से गठित इस संस्था की संरचना और कार्यपण्राली में समय की मांग के अनुरूप सुधार नहीं हो पाया है। ऐसा ही चलता रहा तो इस संगठन का भी वही हश्र होगा जो प्रथम विश्व युद्ध के बाद गठित राष्ट्र संघ का हुआ था।

गौरतलब है कि राष्ट्र संघ द्वितीय विश्व युद्ध रोक पाने में बुरी तरह विफल हुआ था। द्वितीय विश्व युद्धके भयानक परिणामों को भुगतने के बाद संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुईथी। बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था की चुनौतियों से निपटने में यह प्रभावशाली साबित नहीं हो पा रहा है। इसीलिए भारत समेत अनेक देश संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों की संख्या बढ़ाने या मौजूदा स्थायी सदस्यों को प्राप्त वीटो अधिकार को समाप्त करने की मांग कर रहे हैं। लेकिन इस मुद्दे पर सभी देशों की सहमति नहीं बन पा रही। नई दिल्ली लंबे समय से सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता की मांग कर रही है, लेकिन अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, रूस और चीन जैसे पांच स्थायी सदस्यों की सत्ता राजनीति के चलते बात नहीं बन पा रही। इन पांचों देशों की जिम्मेदारी बनती है कि इस संगठन को चुनौतियों से निपटने लायक बनाने के लिए

भारत समेत जर्मनी, जापान जैसे देशों को सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य बनाने के लिए आगे बढ़कर पहल करें। ऐसा नहीं होता है तो संयुक्त राष्ट्र भी राष्ट्र संघ की तरह नई चुनौतियों से निपटने में निष्प्रभावी होकर रह जाएगा।

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 11-10-18

More teeth for NHRC

Panel requires independent investigation mechanism, diversity in composition.

A P Jithender Reddy

This year marks the 25th anniversary of the National Human Rights Commission (NHRC). The Commission, which draws its mandate from the Protection of Human Rights (PHR) Act 1993, has been mired in controversies since its formation. As the government seeks to introduce amendments to the Act in Parliament's Winter Session, it is important to understand this piece of legislation in the context of its history. The Amendment Bill intends to strengthen human rights institutions in this country. But it falls short of this objective by some distance. Is the reform, then, merely an attempt to save the country's reputation in international human rights fora?

In 1993, the UN General Assembly adopted the Paris Principles on Human Rights. This led to the constitution of national human rights institutions in almost every country. Every five years, India's human rights agency, the NHRC, has to undergo accreditation by an agency affiliated to the UN Human Rights Council (UNHCR). The Commission's compliance to the Paris Principles is ascertained in this process, which is similar to NAAC accreditation of Indian colleges — better the grade, higher the benefits. Thus, if India gets an A-status, the NHRC can play a pivotal role in the decision-making processes of the UNHRC and other important international bodies.

In 2016, the accreditation agency deferred grading the NHRC because of the Commission's poor track-record — especially, political interference in its working. But the agency was satisfied with the government's commitment to introduce necessary changes to the Commission and granted the NHRC A-status in 2017. The PHR (Amendment) Bill, 2018 is an outcome of this commitment. While the Bill seeks to diversify the Commission's composition, it falls short of bringing out substantial changes to the NHRC.

The NHRC is fraught with mischief at its very basis. The selection committee tasked with appointing the chairperson and the members to the Commission is dominated by the ruling party. It consists of the prime minister, home minister, Leaders of the Opposition in the Lok Sabha and Rajya Sabha, the Lok Sabha Speaker and the Deputy-Chairman of the Rajya Sabha. There is thus a need to diversify the selection committee.

It comes as no surprise that the NHRC's selection process is very obscure. Very often, the government does not publicise vacancies in the Commission. The criteria to assess candidates is also not specified. As

a result, appointments to the NHRC have been fraught with disputes. All this can change if the government commits to greater transparency in the selection process.

The strong representation of the judiciary in the NHRC has often been defended on the ground that the Commission's work is quasi-judicial. However, this is pertinent to only one of the 10 functions of the NHRC, as described in the PHR Act. The NHRC has also defended the strong presence of the judiciary on the ground that it creates trustworthiness, especially in the eyes of the government. But such reasoning fails to explain the long pendency of the Commission's requests for additional funds.

The much-needed diversification that the Amendment Bill seeks to introduce could be realised through the inclusion of civil society members and academicians with proven track record in the improvement of human rights. The NHRC could certainly benefit from the grass roots level experience, widespread community outreach and the expertise of these organisations or individuals.

However, the above-mentioned changes would be of little consequence if the investigation mechanism is not rectified. Police officials investigating for the NHRC are sent on deputation by their forces. Their allegiance lies with their home cadre to which they return after their tenure at the Commission is over. This conflict of interest restricts the scope of their work, as they often are charged with investigating abuse of power by law enforcement personnel. Adding officials of the Intelligence Bureau to the mix only muddies the water. These officials are not answerable to anyone, there is no parliamentary oversight on their functioning, they do not owe financial accountability to the Comptroller and Auditor General, and have often been accused of human rights violations themselves. The NHRC urgently requires officers of its own to carry out independent investigations, and the government should provide it resources for the same.

The NHRC cannot escape the blame either. It does have powers to conduct its own investigation in cases where the Centre or state government do not respond within the time stipulated by Section 17 of PHR Act. However, the Commission has rarely used this power. A year after the Supreme Court called the NHRC a "toothless tiger", the onus is on the government to bestow the Commission with more teeth.